हिन्दी साहित्य

बाजार से बाजारवाद तक

सम्पादक

डॉ. भगवान गव्हाडे

Scanned by CamScanner

हिन्दी साहित्य
बाज़ार से बाज़ारवाद तक

लेखक
डॉ० भगवान गव्हाडे

साहित्य सागर
(पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स)
128/23-'R', रवीन्द्र नगर, यशोदा नगर
कानपुर - 208 011

Scanned by CamScanner

हिन्दी साहित्य बाज़ार से बाज़ारवाद तक

लेखक
डॉ० भगवान गव्हाडे

प्रकाशक
साहित्य सागर
128/23 'R', रवीन्द्र नगर, यशोदा नगर
कानपुर - 208 011
Mob. : 9450766327, 9005904629
Email : *p.prakashan03@gmail.com*

© सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण : **प्रथम, 2015**

ISBN : 978-93-82234-08-1

मूल्य : **रु० 600/-**

शब्द सज्जा
रिचा ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक
साक्षी आफसेट, कानपुर

Scanned by CamScanner

23. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और साहित्य 126
24. वैश्वीकरण का सामाजिक परिप्रेक्ष्य (नारी के विशेष संदर्भ में) 130
25. बाजारवाद और हिन्दी कविता 134
26. बाज़ारवाद और मानवीय मूल्य 137
27. वैश्वीकरण, उदारीकरण और बाजारवाद : एक विश्लेषण 141
28. साहित्य, सिनेमा और बाजारवाद 145
29. साहित्य, सिनेमा और बाज़ारवाद 149
30. बाज़ारवाद और मानवीय मूल्य 152
31. वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की अवधारणाएँ 156
32. बाज़ार से रूबरू नाटक 161
33. वैभव और बाज़ार का यथार्थ चित्रण 'देशनिकाला' 167
34. बाज़ार से रूबरू-'आगरा बाज़ार' 172
35. बाज़ार से रूबरू डॉ. परिहार के निबंध 176
36. वैश्वीकरण, बाज़ारीकरण के प्ररिप्रेक्ष्य में हिन्दी 185
37. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और बाज़ारवाद की यात्रा 189
38. वैश्वीकरण का आर्थिक आधार 194
39. बाज़ारवाद निर्मित भूमंडलीकरण 197
40. बाज़ार के आतंक में साहित्य (आधी हक़ीकत आधा फसाना) 230
41. वैश्वीकरण और बाजारवाद के परिप्रेक्ष्य में हिंदी कविता 210
42. मनुष्य, बाजार और मीडिया 219
43. महिला नाटककारों के नाटकों में बाज़ारवाद 225

Scanned by CamScanner

35

बाज़ार से रूबरू डॉ. परिहार के निबंध

बाज़ार शब्द के संबोधन से हमें बाजार के अर्थ की प्रतीति होती है। बाज़ार अपने आप में बाज़ार है। जहाँ वस्तुओं की खरीददारी एवं बिक्री होती है। एक जमाना था, जब बाज़ार आवश्यकताओं की पूर्ति एवं वस्तुओं के विनिमय का प्रमुख केन्द्र हुआ करता था। परंतु आज बाज़ार ने मानव मन में पूरे रूप में घुसकर उसे कहीं का नहीं छोड़ा है। यह उत्तर पूँजीवादी समाज का धन कमाने का प्रमुख साधन बन चुका है। बाज़ार की चपेट में आए आज के लोग कभी ऐशो-आराम की जिंदगी जीने के लिए वस्तुओं की खरीददारी करते हैं तो कभी हररोज के विभिन्न महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए आवश्यकता वस्तुएँ खरीदते हैं। अत: कईयों को वस्तुओं की जरूरत न होकर भी शोक के लिए वस्तुएँ खरीदते हैं तो कईयों को मजबूरन वस्तुएँ खरीदनी पड़ती हैं। अत: वस्तुओं की इस प्रकार से जहाँ खरीददारी एवं बिक्री होती है उसे ही स्थूल रूप से बाज़ार कहा जाता है। इस बाज़ार शब्द का प्रचलन हिन्दी साहित्य में बीसवीं शती के उत्तरार्ध में अधिक रूप में बढ़ा है। इसके कई कारण हैं। पहला यह कि बीसवीं शती के उत्तरार्ध में भारत की ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व की प्रगति तीव्र गति से शुरू हुई। आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता ने आद्यौगिक क्रांति के द्वार खोले और यंत्राधारित वस्तुओं का निर्माण तेजी से शुरू हुआ। कुटीर उद्योगों पर इसका सीधा परिणाम होने लगा। जो छोटे-मोटे कुटीर उद्योग थे उनसे मिलने वाली वस्तुओं का मूल्य अधिक था, साथ ही उनके द्वारा चीजों का निर्माण करने के लिए बहुत समय लगता था। मगर यंत्राधारित वस्तुओं का निर्माण कम समय में होने से वे बाजार में तुरंत आने लगी और बाज़ार की शीघ्रता एवं व्यापकता बढ़ने लगी। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य का मन लालची है। पहले जब मनुष्य प्राकृतिक वस्तुओं पर आधारित था उसके मन में प्राचीन काल से अधिक चीजें पाने की लालसा निरंतर रही है। इसीलिए वह प्रकृति का निरंतर दोहन करने की ओर बढ़ गया। इसी कारणवश मनुष्य तथा प्रकृति के बीच में नई खाई निर्माण होने लगी। प्रकृति युगों से मनुष्य का साथ देती रही है। लेकिन जब से मनुष्य की उद्योग जनित स्वार्थी आँखें विभिन्न वस्तुओं की खोज में सरपट दौड़ने लगी, तब से उसे प्रकृति केवल उपभोग की वस्तु नजर आने लगी। अपनी विज्ञानवादी सोच के परिणाम स्वरूप मनुष्य ने अनेक कारखानें, मीलें, फैक्ट्रियाँ तथा विविध वस्तुओं के निर्माण की अनेक कंपनियाँ खोली

Scanned by CamScanner

और चीजों का उत्पाद बढ़ने लगा। मनुष्य की इस अंधी दोड़ के कारण हर क्षेत्र की चीजों का उत्पाद भी अधिक मात्रा में बढ़ने लगा। आवश्यकता की चीजों के अतिरिक्त जिन चीजों की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं है, ऐसी चीजें भी अलग-अलग देशों की छोटी-मोटी कंपनियों बनाने लगी। यंत्रों के कारण चीजों का अधिकाधिक उत्पाद बढ़ाने की होड़-सी दुनिया के सभी देशों में लगी है। जितने भी विकसित देश हैं, वे तो इन चीजों का उत्पादन करने ही लगे, परंतु जिन राष्ट्रों की गिनती विकसशील देशों में होती हैं, वे भी अधिकाधिक उत्पाद बढ़ाने में मशगूल हो गये। इन सभी राष्ट्रों के मुख्य प्रयोजन आर्थिक प्रगति करना या धन संचयन के साथ ही अपने-आप को दुनिया में ऊँचे स्थान पर ले जाने का ही रहा है। यह प्रवृत्ति पाश्चात्य देशों में अधिक दिखाई देती है। साथ ही एशिया खंड के जपान तथा चीन जैसे राष्ट्रों में भी अधिक लक्षित होती है। इसी वजह से कुटीर उद्योगों एवं हस्तकला उद्योगों का नाश यंत्राधारित वस्तुओं के बाज़ार ने किया है। इसलिए भारत का ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व का समाज बाज़ार के प्रभाव में आ चुका है।

दुनिया के ये देश हर क्षेत्र की चीजों को बनाने एवं उनकी खपत बढ़ाने में जोर-शोर से प्रयास करने लगे हैं जिसके कारणवश एक नयी संस्कृति ने जन्म लिया है उसे उपभोक्तावादी संस्कृति के नाम से अभिहित किया जाता है। यह उपभोक्तावादी संस्कृति नव-धनाढ्यों के कारण समाज के मध्यम एवं निम्न वर्ग में भी फैली दृष्टिगोचर होती है। इस संस्कृति का आक्रमण तेज गति से विश्व के समाज में बढ़ गया है। इस संस्कृति ने बाजार को बहुत ही बढ़ावा दिया है। बाजार आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जम गया है। इस संबंध में डॉ. माधव सोनटक्के लिखते हैं- बाजार एक महासत्ता के रूप में जीवन के हर क्षेत्र में अधिकार जमा चुका है। अब हर चीज खरीदने और बेचने के लिए पैदा होती है। या कहना चाहिए हर पैदा होने वाली चीज बेचने या खरीदने के लिए ही है। यहाँ तक मनुष्य, सभ्यता, कला, सौंदर्य और मानवीय मूल्य भी क्रय-विक्रय की चीजों में तब्दील हुए हैं।[1] बाज़ार ने नव-धनाढ्यों के साथ ही आम आदमी को भी अपने शिकंजे में फँसा लिया है। अतः इस बाजार का परिणाम एवं प्रभाव समकालीन साहित्यकारों पर पड़ना स्वाभाविक है। इनमें ऐसे अनेक कवि, उपन्यासकार, कहानीकार तथा निबंधकार आते हैं। जिन्होंने अपने साहित्य में आज के इस बाज़ार के परिणामों को यथार्थता के साथ अभिव्यक्त करते हुए समाज को इस बाज़ार से उबरने के लिए सही दिशानिर्देश किया है। अतः डॉ. श्रीराम परिहार भी इनमें से एक हैं। उन्होंने अधिकतर निबंध साहित्य की सर्जना की है। वे समकालीन निबंधकारों में एक ऐसे निबंधकार हैं कि जिन्होंने बाज़ार के गिरफ्त में आए समाज का बखूबी अंकन निबंधों में किया है। उनके अबतक आठ निबंध संकलन प्रकाश में आए हैं जिनमें संकलित अनेक निबंधों में उन्होंने समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणामों पर खुलकर विचार प्रस्तुत किए हैं।

Scanned by CamScanner

आज हम देखते है कि खान-पान की चीजों से लेकर ऐशो-आराम की वस्तुओं तक, सुई से लेकर बड़े-बड़े औजारों तक, एक छोटे-से उद्यम से लेकर राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय कंपनियों तक, मोबाईल से लेकर संगणक तथा इंटरनेट तक, रेडियो से लेकर टी.वी. के विभिन्न चैनलों तक, नौटंकी से लेकर फिल्मों तक, स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक, समाज की छोटी-सी गतिविधि से लेकर एक बहुत बड़े आंदोलन तक, एक छोटी सी जाति से लेकर बड़े-बड़े धर्मों तक, राजनीति की स्वार्थी वृत्ति से लेकर भ्रष्टाचार के विभिन्न घोटालों तक आदि सभी क्षेत्रों में विज्ञापनों का बोलबाला शुरू हो चुका है। विज्ञापनों के द्वारा अपने आप को प्रसिद्ध करना एवं अपनी चीजों को बढ़ावा देकर उनकी बिक्री बढ़ाना ही हर एक वर्ग का उद्देश्य दिखाई देता है। भारतीय समाज इन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की वस्तुओं के जंजाल में फँस चुका है। आजादी के बाद की सामाजिकता एवं समता को पूर्णत: भूल रहा है और पश्चिमी बाजार के जाल में मजबूत रूप से जकड़ता जा रहा है। इसका बुरा असर यह हो रहा है कि हम अपने रिश्तों एवं नातों को भूलते जा रहे हैं। एक खामोशी आदमी के दिलों-दिमाग में फैलती जा रही है। एक दूसरे के सुख-दु:ख जानना तो दूर हम आपस में औपचारिक रूप में ठीक ढंग से बातचीत भी नहीं कर पा रहे हैं। यह इस डर से कि मोबाईल तथा इंटरनेट के द्वारा पैसा अधिक न कट जाए। अपनी महान संस्कृति के कई अहम पहलुओं को भी भूलते जा रहे हैं। इस प्रकार की मंशा केवल नवपूँजीवादी एवं उपभोक्तावादी वर्ग की ही हो चुकी है, ऐसा नहीं है, बल्कि इस वर्ग की देखा-देखी आम आदमी भी इसकी चपेट में आ चुका है।

आज भारतीय समाज दूसरे की वस्तुओं को ही नहीं, बल्कि उनकी हँसी को भी खरीदने के लिए स्वार्थवश मजबूर हो चुका है। इस संदर्भ में डॉ. परिहार लिखते हैं- राजधानी की हवा बदली हुई है। समुद्र पार से मुस्कान के बंद डिब्बों में भेंगाया जा रहा है।[2] पाश्चात्य मंशा हमें वस्तुओं के अधीन करती चली जा रही है और हम हैं कि बेलगाम दौड़ते घोड़े की तरह उनके द्वारा बनाई गयी चीजों को खरीदने के लिए भागे जा रहे हैं। आवश्यकताओं की चीजें तो हम खरीद ही रहे हैं, लेकिन जिन चीजों की कभी-कभार आवश्यकता पड़ती है अथवा जो चीजें केवल शानो-शौकत की होती हैं, ऐसी चीजें भी खरदीते जा रहे हैं। हमें इन चीजों से प्रभावित करने का कार्य नवपूँजीवादी समाज कर रहा है। वह चीजों को नये-नये रूपों में हमारे-सामने परोस देता है और हम हैं कि उन चीजों की बाहरी चमक-दमक को देखकर उसे खरीदने के लिए ललायित होते हैं। इसी वजह से नव पूँजीवादी वर्ग अपने धन में बढ़ोत्तरी कर रहा है और अधिकाधिक धन कमाने की इच्छा से प्रेरित होकर नयी-नयी वस्तुओं को बाज़ार में पेश कर रहा है।

आज दुनिया के तमाम शक्तिशाली राष्ट्रों की मंशा इस प्रकार की बन गयी है कि हम अपने यहाँ मूल्यपरक वस्तुओं का निर्माण करें और दूसरे राष्ट्र इनसे होने वाले

Scanned by CamScanner

प्रदूषण की भरपाई करे। इस मंशा से प्रेरित राष्ट्र विश्व में अन्य राष्ट्रों को अपने अधीन रखना चाहते है, ताकि वे मनमानी कर सकें और अपना विकास कर सकें। इस संदर्भ में डॉ. परिहार लिखते हैं- दूरदर्शन और अखबारों में शक्तिशाली राष्ट्र रीज और बैकेल की झाड़ियों सरीखे हवा-हवा झूम रहे हैं। उनके कभी-कभी सींग निकल आते हैं और वे परमाणु बम की पुटलिया बाँधे खुरांट साँड़ की भाँति ड़कराते इध र-उधर फिरते रहते हैं। एक बेतौल का बोल कि पूरी दुनिया में वह होगा, जो हम चाहेंगे। लोग वो बोएंगे, जो हम उगाएगें, हम देंगे। दुनिया के दूसरे देश अपने यहाँ पेड़ लगाएँ, हम अपने यहाँ उद्योग लगाएँगे। उपभोग हम करें, उपभोगी वस्तुओं के उत्पादन में पर्यावरण प्रदूषण का कारण हम हैं और निदान दूसरे खोंजें।[3] पूरा विश्व इस भोगवादी संस्कृति एवं वस्तुओं के साये में जी रहा है। परजीवी बनने की होड़ा-होड़ी भी दुनिया के नवधनाढ्यों में अधिकता से दृष्टिगत होती है। भारत का नवपूँजीवादी वर्ग पश्चिम का अंधानुकरण करने में माहिर है। वह पश्चिम में बनी अनेक चीजों का अनुकरण करता है या उनमें कुछ एक बदलाव करके उसे भारतीय बाज़ार में पेश करता है। कभी-कभी पश्चिम की बनी वस्तुओं को जस के तस बाज़ार में पेश करता है। उनका विज्ञापन वह समाज के सम्मुख इस तरह प्रस्तुत करता है कि समाज उन चीजों की ओर तुरंत आकर्षित हो जाता है। इसी आकर्षण के कारण यहाँ का समाज उन चीजों को खरीदता है। इसका फायदा नवधनाढ्यों को अधिक मात्रा में होता है। इस वर्ग की मंशा इसके पीछे यही रहती है कि बिना मेहनत के अधिक धन संचय करें और चैन की जिंदगी जियें। इस विषय में डॉ. परिहार लिखते हैं- एक दौड़ पूरे विश्व में- भागवादी दौड़। परजीवी वर्ग बनने की होड़। बिना मेहनत के धनवान बनने की तिकड़म। भारत का वर्ग विशेष इस दौड़ में शामिल है। वह नवधनाढ्य वर्ग अपनी मस्ती और भोग में मशगल है।[4]

एक जमाना था, जब भारतीय व्यवस्था में आदमी को महत्त्व दिया जाता था। वस्तुएँ उसके सामने गौण थी। उनका उपयोग केवल साधन के रूप में किया जाता था, किन्तु आज स्थिति बदल गयी है। आज आदमी को कम आंका जाने लगा है, जबकि वस्तुओं को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। महात्मा गांधी जी ने भी विकास की कामना में मनुष्य का हित ही सर्वोपरि देखा था। इसलिए उन्होंने भारत की आजादी के लिए लंबी लड़ाई लड़ी थी। किंतु आजादी के बाद भारतीय समाज व्यवस्था में अमूलचूल परिवर्तन हुआ है। आज भारतीय समाज वस्तुओं के दबाव से पूर्णत: ग्रसित है। वह अपने आत्मबल एवं स्वाधीनता जैसे महत्त्वपूर्ण मूल्यों को भी खोखला बना रहा है। इसका यथार्थ उद्घाटन करते हुए डॉ. श्रीराम परिहार लिखते हैं- भारतीय व्यवस्था में मनुष्य आगे था। वस्तु पीछे थी। गांधी ने इसी विकासवाद का समर्थन भी किया था और स्वाधीन भारत के लिए विकास की आचार संहिता में इसे जरूरी स्थान भी दिया था। भूमण्डलीकरण व्यवस्था में भोगवादी और

Scanned by CamScanner

वस्तुवादी धारणाएँ और प्रक्रियाएँ मुखर हैं। भारत ने इस व्यवस्था का अंधानुकरण किया। आज हम पर वस्तुओं का जबर्दस्त दबाव है। आज हमारी स्वाधीनता पाशविकता या क्रूरता से नहीं, वस्तुओं से ज्यादा प्रभावित हो रही है। वस्तुएँ हमारी स्वाधीनता को अपाहिज कर रही हैं। आत्मबल और स्वानुशासन के स्थान पर एक प्रकार का शून्य व्याप्त से गया है।[5] इस कथन से स्पष्ट होता है कि आज हम वस्तुओं के कितने अधीन जा चुके हैं। इन वस्तुओं के प्रभाव में आकर हम अपना सही आंतरिक विकास भी भूलते जा रहे हैं। देश के विकास की बात तो बहुत दूर की बात है। इन वस्तुओं से हमारे बीच का जो प्रेम, भाईचारा एवं आत्मीयता का रिश्ता था। वह भी खत्म होता जा रहा है। वस्तुएँ हमें कुछ समय के लिए सुख दे सकती हैं, वस्तुएँ कमरा भर सकती हैं, लेकिन अपने घर को नहीं बचा सकती। चूँकि घर तो वस्तुओं से नहीं, बल्कि आत्मीक भावों से भरता है। रिश्ते-नातों से भरता है। आपसी भाईचारे से भरता है और भरता है पवित्र एवं निश्चल प्रेम की धारा से अत: हमारी एवं अगली पीढ़ी को इन वस्तुओं के बाज़ार से बचाना जरूरी है। उन्हें विकास के सही पहलुओं का ज्ञान देना आवश्यक है। उनमें नैतिक मूल्यों तथा मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित करना जरूरी है। तभी इस देश का असली विकास संभव है। नव-पूँजीवादी व्यवस्था धन की अधिकाधिक प्राप्ति हेतु नये-नये हथकंडों को अपनाकर गलत तरीके से धन कमा रही है। इस नव-पूँजीवादी व्यवस्था की पूँजी केवल भारतीय बैंकों में ही नहीं, बल्कि विश्व के कई नामी-गिरामी बैकों में जमा है। इनका गलत तरीके से कमाया काला धन स्वीश जैसे बैकों भी जमा है। वह सेकड़ों एवं लाखों में नहीं, बल्कि अरबों एवं खरबों रूपयों में है। इस धन को भारत में लाने के प्रयास भी हो रहे हैं। इन काले धन का संचयन जो लोग कर रहे हैं। उन्हें यह बात आवश्य पता होनी चाहिए कि वह धन भी एक-न-दिन गलत रास्ते से निकल ही जाएगा। इस संदर्भ में डॉ. परिहार लिखते हैं जिसके पास गलत ढ़ंग से धन आता है, उस धन के जाने के रास्ते भी गलत होते हैं। गलत से अर्थ यह भी है कि उसका उपभोग बाजार निर्धारित करता है। वह निर्धारण कुछ ऐसा होता है कि व्यक्ति वस्तु का गुलाम हो जाता है। उसकी राते अपनी नहीं होती। नींद अपनी नहीं होती। स्वप्न अपने नहीं होते।[6] इसलिए नवधनाढ्यों को यह चेतावनी है कि वे गलत तरीके से धन कमाने का लालच ना रखें और आम लोगों को फँसाएँ नहीं। वरन् उनकी नींद नष्ट हुए बिना नहीं रहेगी।

आज प्रत्येक मनुष्य का सोच वस्तुओं के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाती दिखाई देती है। वस्तुओं के कारण हमारा बाहरी परिवर्तन जरूर हो चुका है। किन्तु आंतरिक परिवर्तन नष्ट हो जाता रहा है। अगर यह सिलसिला इसी तरह से जारी रहेगा और मनुष्य केवल वस्तुओं के विचार में ही खोता रहेगा तो उसका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। इस संदर्भ में परिहार ने लिखा है- जर्मन दार्शनिक कार्ल यास्पर्स ने सिद्ध

Scanned by CamScanner

किया कि बड़े-बड़े कल-कारखानों वाली औद्योगिक सभ्यता एक महामारी है। इस सभ्यता में प्रत्येक विचार वस्तुगत होता है जबकि मनुष्य की विचारशीलता का वास्तविक स्त्रोत वस्तु नहीं, चेतना होनी चाहिए। विचार की वस्तुगत कसौटी से मानव अस्तित्व ही खतरे में पड़ता जा रहा है। उसके मनोजगत्, उसकी स्वच्छंदता, उसकी अपनी दृष्टि, उसका आत्मज्ञान सब रौंद डाला गया। वस्तुजगत ज्ञान से बाहरी प्रगति हुई, भौतिक संपन्नता बढ़ी, परंतु मनुष्य की आंतरिक शक्ति का क्षरण हुआ। वह बाहरी तौर पर समृद्ध हुआ आंतरिक तौर पर कमजोर हुआ। उसका आत्मज्ञान लुप्त हो गया है। उसकी वस्तु की परख विकसित हुई। स्वयं की परख धूमिल होती चली गई। यह अच्छी स्थिति नहीं है।[7]

समाज के हर क्षेत्र में बाज़ार का बोलबाला है। यंत्रों पर निर्भर मनुष्य प्रकृति के उत्पादों को बुरी तरह से नष्ट कर रहा है। वह प्राकृतिक वस्तुओं का अधिक मात्रा में दोहन कर चुका है और उसका यह दोहन करने का सिलासिला आज भी जारी है। इसी कारणवश प्राकृतिक वस्तुएँ दुर्लभ होती जा रही हैं। लेकिन यंत्रों के द्वारा निर्मित वस्तुएँ यत्र-तत्र सर्वत्र मिल रही हैं। इसका अंकन डॉ. परिहार ने स्पष्ट रूप से किया है। वे कहते हैं- ''आज प्रकृति जन्य उत्पाद दुर्लभ होता चला जा रहा है। यंत्र आधारित उत्पाद सर्वत्र सुलभ है।[8] अत: हमें इसके घातक परिणामों से अवगत होना जरूरी है। बाज़ार ने राजनीति, साहित्य, कला, सौंदर्य, अर्थनीति के साथ ही धर्मनीति में भी प्रवेश किया है। बाज़ार और धर्म में आजकल होड़ा-होड़ी दिखाई दे रही है। लेकिन लोगों को समझना चाहिए कि बाज़ार केवल भौतिक साधनों का ही होता है। हमारे आत्मिक साधनों की उन्नति के लिए धर्म की विभिन्न आदर्शात्मक आध्यात्मिक बातें जरूरी होती हैं। इसलिए धर्म की आदर्श बातों को कदापि नहीं भूलना चाहिए। इस बारे में परिहार ने लिखा है- बाज़ार हमारे चुल्हे-चौके तक चला आया है। बच्चों की लय में विज्ञापन ठुमक रहे हैं। धर्म की भीड़ में से शैतान निकलकर 'गोधरा' स्टेशन पर 'साबरमती' में आग लगा रहा है। बाज़ार और धर्म आज दोनों ही विज्ञापन तथा होड़ा-होड़ी की दौड़ में हैं। बाज़ार की संरचना भौतिक है। धर्म की आध्यात्मिक। लेकिन जब बाज़ार के विज्ञापन बच्चों की जुबान पर श्लोकों की तरह उच्चारित होने लगें और धर्म बाज़ार की तरह दुकानों पर बिकने लगे तब गड़बड़ी शुरू होती है।[9] यानी धर्म और बाज़ार के विज्ञापनों की यह अंधी दौड़ दुनिया को ले डूब सकती है। इस बात को हमारे दिलो-दिमाग में उतारना आवश्यक है।

शिक्षा के क्षेत्र में पश्चिमी बाज़ार ने चहल-कदमी की है। आज के छात्रों को वाणिज्य एवं विज्ञान शाखाओं की तरफ ही आकर्षित करने की कोशिश जारी है। उन्हें भौतिक सुख-सुविधाओं के अनेक सपने दिखाएँ जा रहे हैं। पाश्चात्य चकाचौंधसे भरी जिंदगी के विज्ञापन उनके सामने अधिक प्रस्तुत किए जा रहे हैं। यह जिंदगी कुछ समय के लिए जरूर अच्छी लगेगी, किन्तु उस जिंदगी में ऐश्वर्य के बावजूद भी

Scanned by CamScanner

नितांत अकेलापन होगा। उस जिंदगी में भौतिक सुख-सुविधाएँ विपुल मात्रा में होंगी किन्तु संवेदना पूरी तरह से नष्ट हो चुकी होगी। इन तथ्यों से भारतीय छात्रों को अवगत होना चाहिए। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. परिहार लिखते हैं- विज्ञान छात्र की शिक्षा पूरी करते ही विदेश उड़ान के अवसर देगा उसे इटरनेशनल मार्केट मिलेगा। उसकी भारी तनख्वाह होगी। वह एक दूसरी ही दुनिया का निर्माता होगा। जिसमें वैभव के सारे उपकरण मौजूद होंगे। जहाँ मशीनें ही मशीनें होंगी। यंत्रों के बीच मनुष्य की दुनिया होगी। वस्तुओं का बाज़ार होगा। वस्तुओं से भरा घर होगा। वस्तुएँ व्यक्ति के मन में भी करीने से सजी होंगी। मनुष्य की धड़कने वस्तुओं से जुड़ी होंगी। वहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं होगी। उस दुनिया में स्वयं पर हँसने में कोई अवसर नहीं होगे। उसमें दूसरों के लिए रोने की भी कोई गुंजाइश नहीं होगी। एक ऐसा जीवन होगा जिसकी नदी में रस तो क्या संवेदना की काई भी सूख चुकी होगी। जीवन ऐश्वर्य के बीच एकांगी और नितांत अकेली इकाई होगा।[10] अत: इस कथन से स्पष्ट होता है कि वस्तुएँ जीवन में आंतरिक बदलाव नहीं ला सकती। विज्ञान का उपयोग अगर छात्र के आंतरिक एवं बाह्य विकास के लिए किया जाए अथवा आम आदमी के दर्द को समझने के लिए, उनके हित में किया जाए तो वह देश एवं समाज के विकास का प्रमुख आधार बन सकता है। लेकिन उसके दुरूपयोग से सभी की हानि है। आज विज्ञान वस्तुओं के निर्माण में ही अधिक लीन दृष्टिगत होता है। वस्तुओं दफ्तरों से लेकेर घरों तक पहुँच चुकी हैं। खेतों की फसलों से लेकर चाय के बागानों तक उनका बोलबाला है। जिंदगी के हर कदम पर वस्तुओं का पाला मनुष्य के साथ पड़ता ही है। दुनिया के कोने-कोने का व्यक्ति इन सजी-सजायी वस्तुओं के प्रति लगातार लालची हो रहा है। इसलिए संस्कृति, धर्म, राजनीति, अर्थनीति, कला, शिक्षा, प्रशासन आदि सभी क्षेत्रों का व्यक्ति वस्तुओं की खरीददारी करने में रममान है। दुनिया के इस बदलते परिवेश को समय-समय पर साहित्य ने चित्रित किया है। साथ ही समाज को इनसे उबरने के अनेक मार्ग भी प्रशस्त किए हैं। किन्तु आज इस बाजार का बोलाबाला इतना बढ़ा है कि व्यक्ति और वस्तुओं में भेद करना असंभव-सा हो गया है। इसे शब्दांकित करते हुए डॉ. परिहार लिखते हैं- दुनिया में वस्तुएं हैं। वस्तुओं का बाज़ार है। बाज़ार में व्यक्ति खड़ा है। यह नहीं तय हो पा रहा है कि वस्तुएँ मनुष्य के लिए हैं या मनुष्य वस्तुओं के हाथों रखा झुनझुना। बदलते परिवेश में मनुष्य साहित्य और चिंतन के केन्द्र में तो आया, लेकिन यह पदार्थवादी सोच की दुनिया में वस्तु मात्र बनकर रह गया। अत: मनुष्य को वस्तुमात्र बनने से परहेज करना आवश्यक है। वस्तुएँ तो हमारे जीवन में मात्र साधन होती हैं। उनसे बढ़कर मनुष्य जीवन है। वस्तुएँ दुबारा मिल सकती हैं, किन्तु जीवन नहीं। इसी बात की ओर परिहार संकेत करते दिखाई देते हैं।

कुल-मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बाजार ने आदमी को चारो ओर घेर

Scanned by CamScanner

लिखा है। आज मनुष्य की अवस्था उस आदमी की तरह हो चुकी है जो बिना किसी वजह से भी वस्तुएँ खरीदने के लिए मजबूर हो गया है। लेकिन उसका यह कार्य बहुत हद तक गलत है। गलत इस दृष्टि से कि जरूरत की वस्तुओं की खरीददारी अवश्य होनी चाहिए, लेकिन जिन चीजों की जरूरत उतनी नहीं है अथवा जो चीजें केवल शानो-शौकत की है। ऐसी चीजों को खरीदने से उसे परहेज होना चाहिए। चूँकि उसे यह ज्ञात होना आवश्यक है कि बाज़ार की हर वस्तु प्रतिस्पर्धा में स्वयं को और-और चमकदार बनाती है और एक दिन उसका नष्ट होना सुनिश्चित है। बाज़ार ने आदमी को गलत रास्ते अपनाने को भी विवश किया है। उसकी चकाचौंध आदमी को आदमी बनकर जीने नहीं दे रही है। आज आदमी घर में बैठकर अनेक वस्तुओं को खरीदना चाहता है और अपने को सारी सुविधाओं से युक्त करना चाहता है। नव-पूँजीवादी वर्ग इस बात को अच्छी तरह से जानता है। इसलिए वह भी हर प्रकार की सुविधाएँ देने के लिए सदैव तैयार रहता है। लेकिन आनावश्यक वस्तुओं को खरीदने से हमारा ही आर्थिक ढाँचा चरमरा जाता है और बाद में आई विपत्तियों से संवरने के लिए हमारे पास रूपये नहीं बेचते। फिर हमारे हाथ पछतावे के सिवा बाकी कुछ नहीं रहता है। इसीलिए बाज़ार में उपलब्ध विविध आकर्षक वस्तुओं को खरीदने की बजाए जिन वस्तुओं की सचमुच ही आवश्यकता ही ऐसी वस्तुओं की खरीददारी हो। साथ ही वस्तुओं को बाजाए जिन वस्तुओं की सचमुच ही आवश्यकता हो ऐसी वस्तुओं की खरीददारी हो। साथ ही वस्तुओं को बाज़ार में लाने की नवधनाढ्यों की जो मंशा है। उसे हमें समझना आवश्यक है और व्यर्थ में हमारी जमापूँजी बर्बाद नहीं करनी है। नव-पूँजीवादी वर्ग को भी इसका ध्यान रहे कि आज का विचार कर कमाया गया धन दीर्घ काल तक नहीं टिकता। अत: समाज के आंतरिक एवं बाह्य विकास को ध्यान में रखकर वस्तुओं का निर्माण करना आवश्यक है और उन्हें उचित दामों में बेचा जाना जरूरी है जिससे समाज का फायदा हो और उसे जीवनावश्यक वस्तुएँ आसानी से मिल सकें।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. माधव सोनटक्के, पृ. 500-501
2. धूप का अवसाद (वन में वसंत), डॉ. श्रीराम परिहार, पृ. 66
3. वही, (जेठ की तपन), पृ. 72
4. वही, (देश: जो हमारी पहचान है), पृ. 89
5. वही, (देश: जो हमारी पहचान है), पृ. 89
6. भय के बीच भरोसा (कौन ठगवा नगरिया लूटल हो), डॉ. श्रीराम परिहार, पृ. 23
7. भय के बीच भरोसा (कौन ठगवा नगरिया लूटल हो), डॉ. श्रीराम परिहार, पृ. 23

Scanned by CamScanner